बोरेवाला
जयश्री कलत्तिल
चित्र
राखी पेसवानी
एकलव्य

बोरेवाला

मूल अँग्रेज़ी कहानी
जयश्री कलत्तिल

चित्र
राखी पेसवानी

अँग्रेज़ी से अनुवाद
शशि सबलोक

श्रृंखला सम्पादक
सुशील शुक्ल

एकलव्य
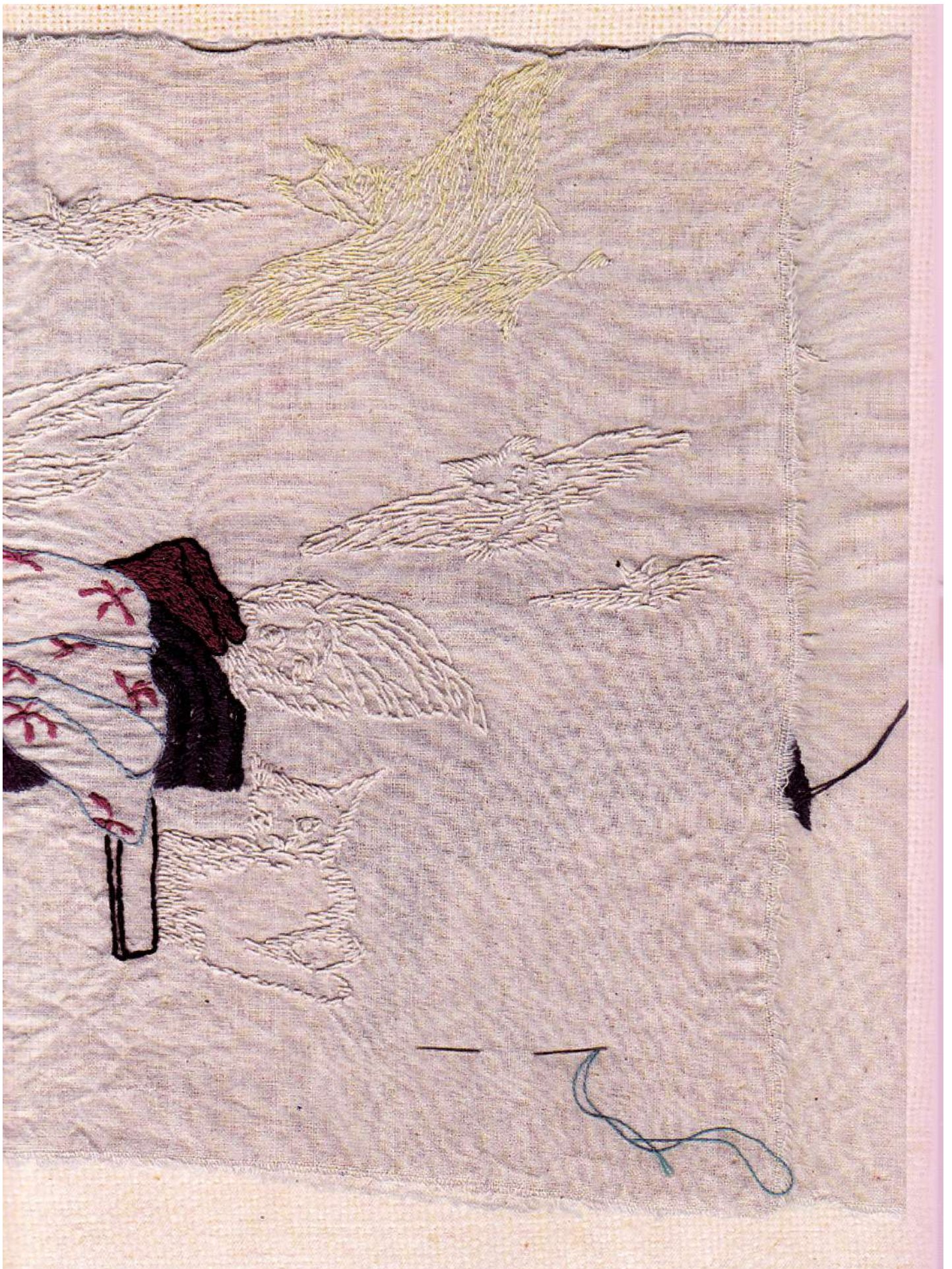
फातिमा टीचर की सीट के पीछे वाली दीवार घड़ी में चार बजने में अभी तीन मिनट बाकी थे। आयाम्मा घण्टी बजाने के लिए बरामदे की ओर चल दी थीं। यह इस साल की आखिरी घण्टी थी। कल से गर्मियों की छुट्टियाँ शुरू हो जाएँगी।

पर मुझे इन छुट्टियों का बिलकुल इन्तज़ार नहीं था। बस इतनी तसल्ली ज़रूर थी कि फातिमा टीचर से कुछ दिनों के लिए पिण्ड छूटेगा। जब देखो मेरी हैंडराइटिंग के पीछे पड़ी रहती हैं। अगले साल बस इतना भर हो जाए कि मुझे उस सोने की बालियों और गुलाबी रिबन वाली मालती के बगल में ना बैठना पड़े। तो अच्छा ही हुआ कि स्कूल बन्द हो गए। यह पहली छुट्टी होगी जब सजिचेची मेरे साथ नहीं होगी। पूरे दो महीने कैसे कटेंगे? क्या करूँगी मैं!

घण्टी बज गई। फातिमा टीचर को अपनी ओर आते देख मैं तेज़ी-से कॉपी-किताबें बैग में ठूँसने लगी।

"तो छुट्टियों का इन्तज़ार था तुम्हें, अनु?"

"हाँ!" उन्हें सच्ची बात बताने का फायदा भी क्या था।

"कोई प्लान-व्लान है?"

"अभी तो नहीं।" मैं बोली। "मुझे जाना होगा। अम्मा इन्तज़ार कर रही होंगी।"

मैं जल्दी-जल्दी बाहर आ गई। वो भी क्लास से निकलीं और आयाम्मा से बातें करने लगीं। मैं जानती थी वो क्या बातें कर रही होंगी। "बेचारी," फुसफुसाते हुए वो कह रही होंगी, "कितनी अकेली हो गई ना! बहन मर गई। माँ की हालत ऐसी हो गई। और निकम्मा बाप..."

मुझे इस सब से नफरत है। पर इन दिनों मेरे आसपास सभी फुसफुसाते रहते हैं। सजिचेची को इन फुसफुसाहटों से निपटना ज़रूर आता होगा। उसे पता होता था कि इन परेशान करने वालों को कैसे चुप कराना है। पर अभी तो वह खुद इन फुसफुसाहटों की वजह बनी हुई है। चार महीने तेईस दिन पहले सजिचेची की मौत हो गई। कोई नहीं जानता कि हल्का-सा बुखार इतना कैसे बढ़ गया कि उसकी जान ही चली गई। डॉ प्रभाकरन ने उसे मेडिकल कॉलेज भी भेजा था पर कोई फायदा नहीं हुआ।

मैं अब इस सब के बारे में बिलकुल सोचना नहीं चाहती थी। सोचती तो रो देती। और रोती ही रहती। मुझे उसकी बहुत याद आती थी – हमेशा आती थी। मैं उसके बिना कुछ नहीं कर सकती। काश, वो वापस आ जाती और मुझ पर हुक्म जमाती...मुझे बताती कि मैं क्या तिकड़म भिड़ाऊँ कि अम्मा बिस्तर से उठ जाएँ और कुछ खा-पी लें। चेची के जाने के बाद से अम्मा सारा-सारा दिन बिस्तर पर लेटी रहती हैं।

मैं चाहती हूँ कि वो वापस आ जाए और बताए कि मैं क्या करूँ कि अच्चन काम से सीधे घर आ जाएँ। बीच में पड़ने वाले राधाकृष्ण ठेके पर रुक ना जाएँ।

अलावा इसके कितनी सारी छोटी-छोटी चीज़ें थीं जिन्हें सजिचेची ने मुझे सिखाया – जैसे, उँगली पर ज़रा भी लगे बगैर नाखून पर नेलपॉलिश लगाना। और पानी के अन्दर साँस रोकना भी मुझे सिखा रही थी। वो कहती थी कि इसका एक तरीका होता है। अगर कुछ गड़बड़ हुई तो कॉर्क की तरह ऊपर तैरने लगोगी। अभी मैं सोलह तक ही गिन पाती हूँ और मेरे फेफड़े हवा के लिए चिल्लाने लगते हैं। मेरी गिनती अब सोलह के आगे कभी नहीं बढ़ेगी।

ओह! कितनी कमी खलती है मुझे उसकी। कितनी याद आती है!

बच्चों की टोलियाँ नीचे नायाड़िपारा जा रही थीं। इनमें मेरी क्लास के भी कुछ बच्चे थे। आज उन्हें घर जाने की कोई जल्दी नहीं थी। उन पर ध्यान दिए बगैर मैं दौड़ पड़ी। मेरा घर धूप में चुपचाप तप रहा था। गुड़हल के फूल प्यासे लग रहे थे। शाम को उन्हें पानी देना ही पड़ेगा।

रसोई में अँधेरा था। शायद अम्मा ने आज कुछ नहीं बनाया था। मैं अन्दर गई। वहाँ लटके केले के गुच्छे से दो केले खा लिए। और फिर ऊपर चली गई। अम्मा अपने बिस्तर पर लेटी थीं। वो थकी हुई और उदास लग रही थीं – अब ऐसा रोज़ होता था। मैं उनके बिस्तर पर चढ़कर बैठ गई। वो हिलीं और मुझे बाँहों में भर लिया।

"कैसा था स्कूल?" उन्होंने पूछा।

"ठीकठाक। कल से छुट्टियाँ।"

"क्यों?"

"अम्मा, गर्मियों की छुट्टियाँ हैं। इम्तिहान खत्म हो गए हैं। अब जून तक स्कूल नहीं जाना है।"

अम्मा को जैसे कुछ सूझ नहीं रहा था। गर्मियों की छुट्टियाँ लग गईं क्या? तो तुम सारा दिन अब घर में ही रहोगी! उन्होंने अपनी बाँहें हटाईं और अपनी आँखें मलने लगीं। अब मैं तुम्हारे साथ करूँगी क्या?"

वो परेशान-सी, अनमनी-सी लग रही थीं। मैं उनके चेहरे पर खीज देख पा रही थी। "तुम ज़्यादा सोचो मत अम्मा," मैं उनसे सटकर बैठ गई, "मैंने रशीदा के साथ ढेर सारे प्लान बना लिए हैं। मेरी फिक्र मत करो।" सजिचेची के बाद मेरी सबसे अच्छी दोस्त रशीदा ही थी।

अम्मा मेरी बात सुन रही थीं सो अपनी बात कहने का मौका मैंने हाथ से जाने ना दिया, "अम्मा, तुम उठकर नहा क्यों नहीं लेतीं? मैं तुम्हारे लिए पानी गरम कर देती हूँ। फिर अपन दोनों गुड़हल को पानी देंगे।"

पर वो तो पहले ही लेट गई थीं। "उठती हूँ। बस एक मिनट में।" वो बोलीं। "बस, थोड़ी देर आराम कर लूँ। तब तक तुम क्यों नहीं पेड़ों को पानी दे आतीं? फिर मैं उठ जाऊँगी।"

मुझे समझ आ गया कि आज तो वो नहीं उठेंगी। उनके कुछ दिन अच्छे होते थे, कुछ बुरे। आज बुरे दिन की बारी थी। डॉ प्रभाकरन इसे डिप्रेशन कहते हैं। मैं उनसे सटकर लेट गई। वो पूरी तरह खुमारी में थीं। पहले जब वो काम के बाद घर लौटती थीं तो सब कुछ कितना अलग होता था। सजिचेची, अम्मा और मैं बगीचे में घूमा करते थे। कभी-कभी अच्चन भी साथ हो लेते। वो गुड़हल के फूल अपने कान के ऊपर लटकाकर कूल्हे मटकाते हुए "हवा हवाई" पर नाचने लगते थे। सजिचेची और मैं उनके आसपास उछलते रहते। अम्मा ज़ोर-ज़ोर से हँसती थीं। फिर झूठमूठ का गुस्सा दिखातीं। फिर वो हम दोनों की कंघी करतीं और चोटियाँ बाँध देतीं। हम दोनों अपना स्कूल का काम करते और इसके बाद रात का खाना होता। खाने के बाद सब साथ-साथ एशिया नेट पर "स्त्री" सीरियल देखते।

इन दिनों अच्चन घर में कम ही दिखाई देते थे। वो देर रात गए आते थे। कभी-कभी जब वो मुझे देखने मेरे पास आते तो मैं जाग जाती। मैंने सोच लिया था कि आज उनके आने तक मैं जागी रहूँगी। मैं उठी और बाहर पौधों को पानी पिलाने चली गई।

***

मैंने "स्त्री" नहीं देखा – अकेले टीवी देखना कितना बोरिंग लगता था। और वैसे भी इस सीरियल में होता ही क्या है – बस रोना रोना रोना। बजाय इसके मैंने सोचा कि मैं कुछ लिखती हूँ। मैं बड़े होकर लेखक बनना चाहती हूँ। अच्चन कहते हैं कि लेखक बनने के लिए आपका लगातार लिखते रहना ज़रूरी है। अब तक मैंने दो कहानियाँ लिखी हैं। एक है – "मेरा गाँव - मेलेकरा" और दूसरी – "फाख्ता और बन्दर"। यह कहानी एक बोलती फाख्ता और एक सैनिक बन्दर की है जो पूरी दुनिया साथ-साथ घूमने जाते हैं। अच्चन इसे घुमक्कड़ी की कहानी कहते हैं। और कहते हैं कि एक दस साल के बच्चे के लिए ऐसा लिख पाना तो "एक बड़ी उपलब्धि" है।

मैं फर्श पर लेटी-लेटी सोचने लगी कि अब क्या "उपलब्धिनुमा" चीज़ लिखी जाए। तभी पीछे वाले दरवाज़े से कोई आवाज़ आई। मैं जानती थी वहाँ कौन होगा। मैं रेंगती-सी रसोई में पहुँची और खिड़की से झाँककर देखा। वहाँ छोटे-से बल्ब की मद्धम रोशनी में चाकप्रान्दन खड़ा नज़र आया। मैं जानती थी कि वो भूखा होगा और कुछ खाने की तलाश में आया होगा। अम्मा हमेशा उसे थोड़ी काँजी देती थीं। पर मुझे उससे थोड़ा डर लगता था। और आज काँजी थी भी नहीं। मैं चुपचाप रहूँ तो क्या पता वो चला ही जाए!

बड़ा अजीब था चाकप्रान्दन। वो फटी-पुरानी बोरियों के थेगड़ों को जैसे-तैसे सिलकर पहनता था। इसीलिए लोग उसे "चाकप्रान्दन" पुकारते। एक दिन रशीदा की दादी खदीजुम्मा ने बताया कि जब वह मेलेकरा में पहली बार नज़र आया था तो बहुत बढ़िया कपड़े पहनता था। और बहुत स्मार्ट दिखता था। कोई नहीं जानता वो कहाँ से आया। एक दिन वो आया और फिर कभी नहीं गया।

चाकप्रान्दन हमारे घर के सामने वाली गली में सोता था। पोस्ट ऑफिस के पास वाली दुकान के बरामदे पर। मुझे उसे देखते रहना अच्छा लगता। पर सजिचेची कहती थी कि लोगों को इस तरह घूरते रहना कोई अच्छी बात नहीं। पोस्ट मास्टरनी अम्मिनिअम्मा उस पर हमेशा चिल्लाती रहती थीं क्योंकि वो बरामदे में मूतता था। पर उन्होंने उसे वहाँ से भगाने की कोशिश नहीं की। सुबह जब वो पोस्ट ऑफिस खोलतीं, चाकप्रान्दन चुपचाप उठकर चल देता। मुझे वो कभी बरगद के पेड़ के नीचे बैठा और कभी इंग्लिश स्कूल के बाहर हम बच्चों को खेलता देखता नज़र आता। कुछ बच्चे कभी-कभी उसका मज़ाक बनाते। पर ज़्यादातर उसे उसके हाल पर छोड़ देते।

सिवाय उस बार के जब सजिचेची और मैंने उसे मुरली मेनन से पिटते देखा। मुरली मेनन की सब्ज़ी की दुकान थी। उस शनिवार हम अच्चन के साथ बाज़ार गए थे। चाकप्रान्दन बाज़ार में इधर-उधर घूम रहा था। वो बहुत उत्साहित लग रहा था क्योंकि वहाँ जहाँ-तहाँ बोरियाँ पड़ी थीं। चलते-चलते उसने मुरली मेनन की दुकान के सामने खाली पड़ी एक बोरी उठा ली। मेनन अपनी दुकान से दौड़ता आया और उसे गालियाँ देने लगा। उसने उसके हाथ से बोरी छीनने की कोशिश की। पर चाकप्रान्दन का बोरी वापस करने का कोई इरादा नहीं था। फिर क्या, मेनन उसे मारने-पीटने लगा। सारे लोग उसे बचाने के लिए चीखने-चिल्लाने लगे।
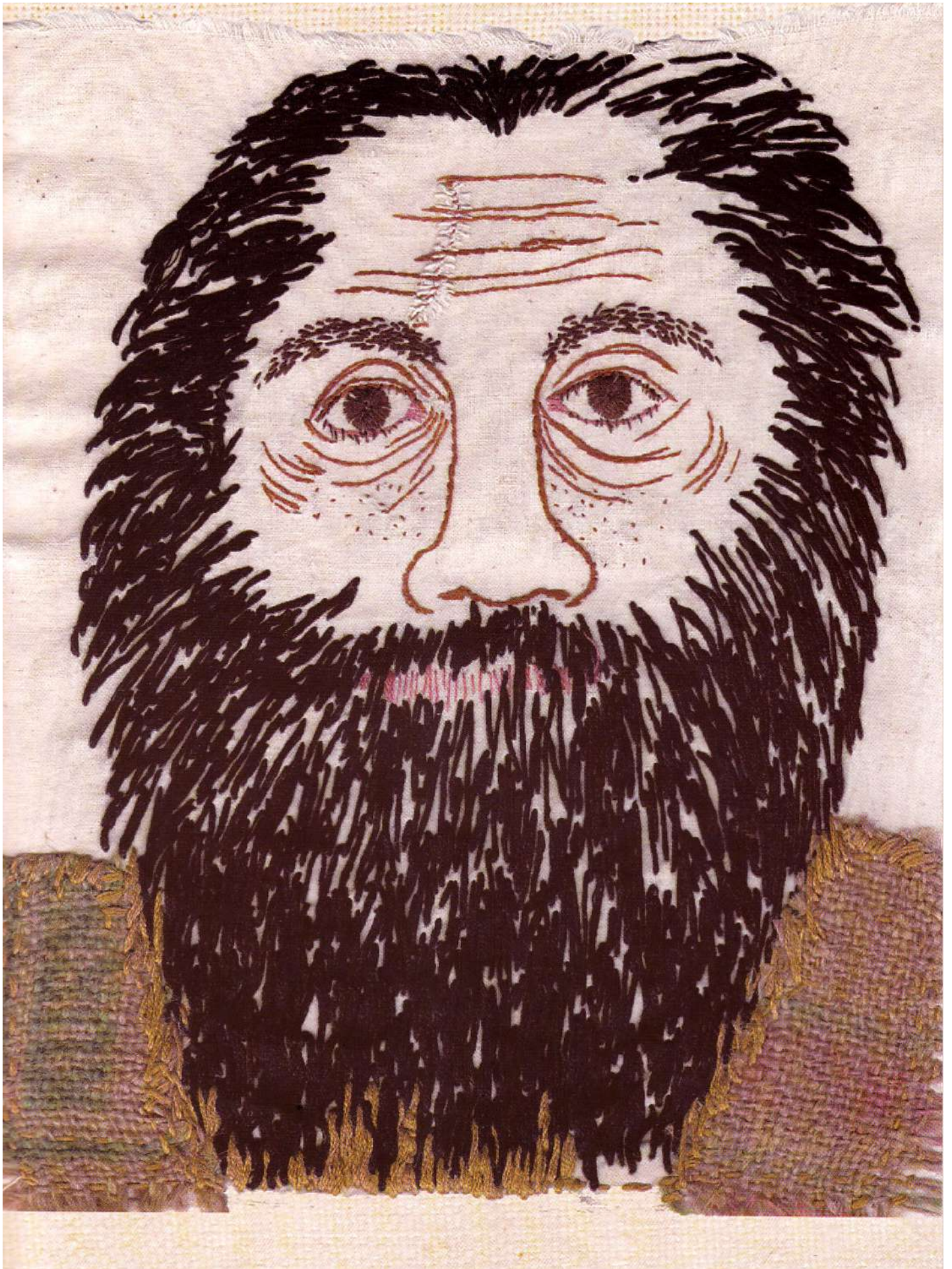
सजिचेची बोली, "अगली बार जब भी मेनन हमारे गालों पर चुटकी भरते हुए मिठाई देगा, हम उसे जीभ दिखाकर भाग जाएँगे।"

मुझे समझ नहीं आता था कि वो यहाँ मेलेकरा में आया ही क्यों। उसका परिवार कहाँ था? क्या कोई उसका इन्तज़ार करता होगा? कई ऐसे भी दिन होते थे जब अच्चन 10 बजे तक भी घर नहीं आते थे तो मैं परेशान हो जाती और सोचने लगती कि अगर वो कभी घर लौटे ही नहीं तो क्या होगा! शायद मुझे चाकप्रान्दन के परिवार पर एक कहानी लिखनी चाहिए। पर जब सोचने बैठी तो मुझे कुछ नहीं सूझा।

मैंने रसोई की खिड़की से फिर से झाँका। वो चला गया था। हो सकता है वो हमारी पड़ोसन माधवीअम्मा के घर गया हो। मैंने सोच लिया था कि अगर वो कल भी आता है तो मैं हिम्मत करके उसे खाना दे दूँगी।

***

उस रात मैं अच्छे-से सो नहीं पाई। एक मच्छर लगातार मेरे कानों में भिनभिनाता रहा। और बीच-बीच में जब झपकी लगी भी तो एक ही सपना चलता रहा। वो यह कि फातिमा टीचर ने मुझ अकेली को क्लास में रोक लिया है और कह रही हैं कि जब तक मेरी हैंडराइटिंग नहीं सुधरती वो मुझे छोड़ेंगी नहीं। पर जब मैं एक सीधी लकीर में लिखने की कोशिश करती तो मेरी लाइन "त्रिशूर से टिम्बकटू" की ओर चल देती। सजिचेची ऐसा ही कहती थी।

नीचे से आवाज़ें आ रही थीं। मैं नीचे गई तो देखा वल्यअम्मा रसोई में थीं। वल्यअम्मा मेरी बड़ी मौसी हैं – मुझे वो सबसे ज़्यादा पसन्द हैं। वो कहती थीं कि सजिचेची और मैं बड़े होकर वल्यअम्मा और अम्मा जैसे ही होएँगे। पर अब सजिचेची के चले जाने के बाद पता नहीं मैं बड़ी होऊँगी तो कैसी होऊँगी।

अम्मा स्टूल पर बैठी थीं। वल्यअम्मा तौलिए से उनके बाल सुखा रही थीं और उन पर गुस्सा हो रही थीं।

"थोड़ी कोशिश तो करनी ही पड़ेगी ना शारदा," वल्यअम्मा कह रही थीं। "कह नहीं सकती इतनी तेज़ धूप में खेतों से होते-होते रोज़-रोज़ तुम्हारे पास कब तक आ सकूँगी। यहाँ आने के लिए ऑटो भी तो नहीं मिलता।"

अम्मा कुछ नहीं बोलीं। बस सिर झुकाए बैठी रहीं।

"कल तुमने अपनी दवाई ली?" वल्यअम्मा ने पूछा। "ठेके में शामें बिताने की बजाय काश रामू अपनी थोड़ी ज़िम्मेदारी समझता। तुम दोनों शायद भूल गए हो कि तुम्हारी एक बच्ची भी है, जो अभी ज़िन्दा है। वो आवारा बिल्लियों की तरह सारा दिन यहाँ-वहाँ भटकती रहती है। तुम दोनों ने कभी फिक्र की है कि उसने खाया-पीया है कि नहीं, स्कूल टाइम पर जा रही है कि नहीं?"

वल्यअम्मा का इस तरह बोलते जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। मैं जानती थी कि वो अघा गई हैं। पर इससे अम्मा और भी उदास और डिप्रेस हो जाती हैं। सो मैं अन्दर चली गई। मुझे देखकर वो चुप हो गईं।

"अनु, नींद अच्छी आई? कॉफी चाहिए?"

मैंने कॉफी ली और अम्मा के बगल में बैठ गई। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "तो आज तो स्कूल नहीं है। क्या सोचा है... क्या करोगी पूरे दिन?"

"पहले मैं रशीदा से मिलने जाऊँगी। फिर हम इंग्लिश स्कूल के मैदान में खेलेंगे।"

"धूप में ना खेलना। लू लग जाएगी।" अम्मा स्टूल से उठते हुए बोलीं।

"नाश्ता नहीं करोगी?" वल्यअम्मा ने अम्मा से पूछा।

"करूँगी। पर थोड़ा लेट लूँ पहले।" कहती हुई अम्मा सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं।

वल्यअम्मा कुछ कहने को हुईं, पर रुक गईं। फिर मेरी तरफ देखती हुई बोलीं, "मंजन कर लो। फिर नाश्ता कर लेना। मैंने उपमा बनाया है।"

अच्चन काम पर जा चुके थे। नाश्ते के बाद वल्यअम्मा ने अम्मा को ज़बरदस्ती दूध के साथ दवाइयाँ दे दीं। अम्मा को दवा लेना पसन्द नहीं था। वो कहती थीं कि दवाओं से उन्हें नींद आती है। कभी-कभी मुझे लगता था यह सही भी है। वल्यअम्मा जब नहीं होतीं तब दवा लेने के लिए मुझे अम्मा के पीछे नहीं पड़ना चाहिए।

वल्यअम्मा के जाने के बाद मैंने फ्रिज खोलकर देखा। उन्होंने बहुत सारा खाना बना रखा था। चलो, अम्मा को इस बारे में तो नहीं सोचना पड़ेगा। तो अब क्या किया जाए? कुछ सूझा नहीं तो सोचा चलो कुछ लिखती हूँ। हो सकता है कहानी लिख लूँ तो अच्चन उसे पढ़ने, उसे सुधारने के बहाने एक शाम मेरे साथ गुज़ार लें।

मैंने एक छोटी लड़की डेज़ी के बारे में लिखा जिसके पास जादुई शक्तियाँ थीं। वो पेड़ों, पशुओं और चिड़ियों से बात कर सकती थी। उनकी बातें सुन सकती थी। इसलिए उसे कभी अकेलापन नहीं महसूस होता था। पर अब इसके आगे क्या लिखूँ... कुछ सूझ नहीं रहा था। उससे क्या कारनामे करवाऊँ – कुछ सोच ही नहीं पा रही थी।
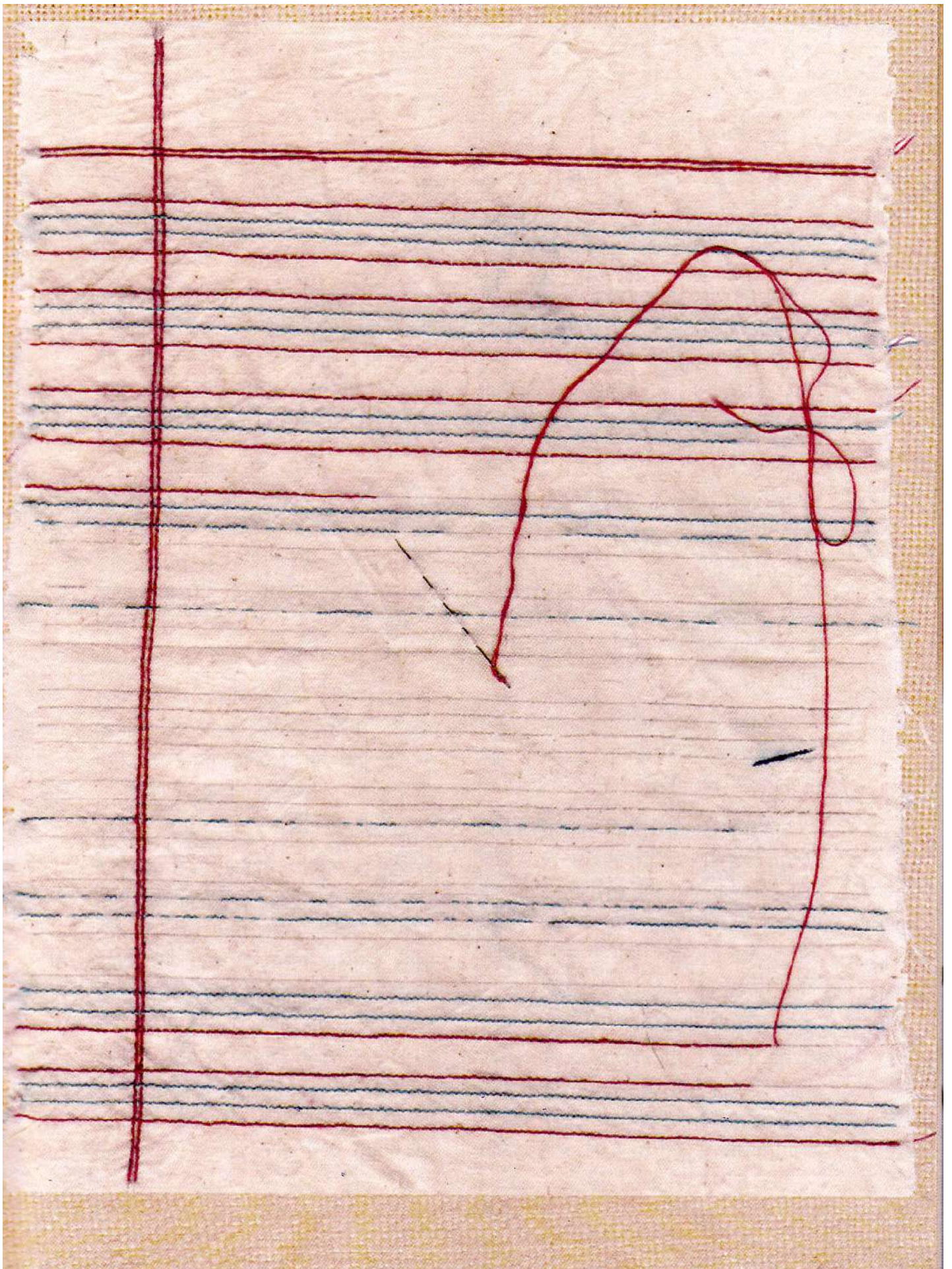
फिर मैंने सोचा चलो रशीदा के घर चलती हूँ। अम्मा को बोलने गई तो देखा वो दीवार की ओर मुँह किए सो रही हैं। मैंने धीरे-से कहा, "जा रही हूँ।" कोई जवाब नहीं मिला तो मैं यूँ ही चल दी।

रशीदा मेरे घर से ग्यारह घर दूर रहती थी। इंग्लिश स्कूल के पास। वो भी बोर हो रही थी। उसे भी कुछ सूझ नहीं रहा था। हमने थोड़ी देर क्रिकेट खेला। फिर धूप तेज़ हो गई तो हम उसके घर चले गए और साँप-सीढ़ी खेलने लगे। रशीदा ने कहा कि वो दो हफ्तों के लिए अपने कज़िन के घर एर्नाकुलम जा रही है।

"हम वहाँ वॉटर वर्ल्ड जाएँगे, नाव में बैठेंगे और खूब सारी फिल्में देखेंगे।" वो बोली। "तुम भी कहीं जा रही हो क्या?"

"नहीं। मैं बस टीवी में फिल्में देखूँगी और वीडियो देखूँगी।" रशीदा ने कहा कि उसके पास "बालरमा" की नई सीरीज़ है। वो मुझे पढ़ने के लिए दे देगी। लौटते वक्त मैंने सोचा क्यों ना डेज़ी से वॉटर वर्ल्ड के कुछ कारनामे करवा लिए जाएँ।

अम्मा अभी भी बिस्तर पर थीं। वो लेटी थीं, सो नहीं रही थीं। "रशीदा के घर अच्छा लगा?" उन्होंने पूछा। मैंने बताया कि रशीदा अपने कज़िन के घर एर्नाकुलम जा रही है। अम्मा ने कहा मैं चाहूँ तो मैं भी अपने कज़िन के घर कालीकट जा सकती हूँ। मैंने मना कर दिया। अम्मा और अच्चन को इस तरह अकेले छोड़ जाना कोई नेक खयाल नहीं था। और फिर कालीकट में मेरे साथ खेलने वाला कौन होगा! वहाँ मेरे सारे कज़िन तो कॉलेज में पढ़ते हैं।

मैं "बालरमा" पढ़ने लगी। खेलने और देर तक धूप में रहने से मेरी आँख लग गई। जब उठी तब तक अँधेरा हो गया था। मैं बत्ती जलाए बगैर लेटी रही। तभी पीछे के दरवाज़े पर ज़ोर का शोर हुआ। मैंने रसोई की खिड़की से देखा। चाकप्रान्दन खड़ा था।

हालाँकि मैंने तय कर लिया था कि आज वो आया तो उसे खाना दूँगी। पर मुझे अभी भी डर लग रहा था। मैं ऊपर गई। सोचा अम्मा को बुला लाऊँ। पर कोई जवाब ना मिला।

मैं फिर से रसोई में आई और थोड़ा-सा दरवाज़ा खोल दिया। चाकप्रान्दन ने मुझे देखा और अपनी प्लेट मेरी ओर बढ़ा दी। वो जगह-जगह से मुड़ी-तुड़ी और पिचकी हुई थी। मैंने उससे इन्तज़ार करने को कहा और रसोई में आकर उसकी प्लेट में चावल और साँभर परोस दिया। एक पापड़ भी रख दिया। फिर वह प्लेट रसोई के दरवाज़े के बाहर रखकर जल्दी-से पीछे हट गई। चाकप्रान्दन ने प्लेट उठाकर अपनी प्लेट में पलट दी। फिर वह वहीं बैठकर खाने लगा।

मैं उसे खाते देखती रही। उसके बाल धूल से सने थे। दाढ़ी घनी थी। माथे पर ज़ख्म का एक छोटा-सा निशान था। दोनों हाथों पर मच्छरों के काटने के निशान थे। उसने अपने बोरे में मुँह घुसाकर कुछ ढूँढ़ा और टीन का एक मग्गा निकाल लिया। वह उसकी प्लेट जैसा ही मुड़ा-तुड़ा था। मैं मुड़ी और जग में पानी ले आई।

फिर वहीं बैठकर चुपचाप उसे देखने लगी। कोशिश कर रही थी कि उसे घूरती ना रहूँ। वह बिना बहुत चबाए जल्दी-जल्दी खा रहा था। खाने के बाद वो "कल" जैसा कुछ बोला और चला गया।

***

चाकप्रान्दन के जाने के बाद मैं टीवी देखने लगी। सोचा था जब तक अच्चन नहीं आते टीवी देखती रहूँगी। वो नौ बजे आए। सिगरेट और रम की बू आ रही थी। सजिचेची के जाने से पहले वो बहुत कम पीते थे। आर्मी वाले करुनन मामा जब कभी उनके लिए रम लाते तब या कभी-कभार शादियों में। पर अब तो वो रोज़ ही पीकर आते हैं। यह अच्छा नहीं है, पर मैं कर क्या सकती हूँ। ऐसे में सबसे बढ़िया तो यही है कि "कुछ गलत नहीं है" का स्वांग रचकर रहा जाए।

लुंगी पहनने के बाद अच्चन रसोई की तरफ गए। मैं भी उनके पीछे-पीछे हो ली।

"तुमने खाना खा लिया?" उन्होंने पूछा।

"नहीं, आपका इन्तज़ार कर रही थी।"

"मैंने तुम्हें कहा था ना कि इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। अपनी माँ के साथ खा लिया करो। यही ठीक है। उन्होंने खा लिया?"

उनकी आवाज़ में कुछ ऐसा था जिससे मैं उखड़ गई। "आपको इसकी कब से फिक्र हो गई? वो ठीक से खाएँ-पीएँ इसके लिए आपने तो कुछ नहीं किया।"

उन्होंने सिर झुका लिया और आँखें बन्द कर लीं। मैं जानती थी मैंने उनका दिल दुखाया है। मुझे बुरा लगने लगा। मैं तुरन्त बोल पड़ी, "पर आज वो उठी थीं। सुबह नहाई भी थीं।"

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और बोले, "चलो, देखते हैं उन्हें क्या खाना है।"

BA

हम उनके कमरे में गए। पर वो दवा लेकर गहरी नींद में सो चुकी थीं। अच्चन उन्हें देखते वहीं खड़े रहे। फिर धीमी आवाज़ में बोले, "बेचारी। काश कि मैं..."

और वो चुप हो गए। मैं सोचने लगी कि वो क्या चाहते हैं। मैं जानती हूँ कि मैं क्या चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि मैं सजिचेची को वापस ले आऊँ। तब सब कुछ पहले जैसा हो जाएगा। अच्चन और अम्मा काम पर जाएँगे और वापस आकर हमारे साथ हँसेंगे, खेलेंगे। अम्मा मेरी हैंडराइटिंग सुधारने में मेरी मदद करेंगी। मैं डेज़ी के नए कारनामों पर अच्चन से बात कर सकूँगी। और तब गर्मियों की छुट्टियों का पहला दिन यूँ ही बैठे-ठाले उधेड़बुन में बीतने की बजाय उत्साह में बीतता। सजिचेची और मैं तय करने में लगे होते कि कब क्या-क्या करना है और कहाँ करना है।

ये सारे खयाल इस तेज़ी-से आए कि मेरी रुलाई फूट गई। मैं खुद को रोक ना सकी। अच्चन ने मुझे गोद में उठाया और थपथपाते हुए कुर्सी पर बैठ गए। "मेरी बच्ची," कहते हुए वे देर तक मुझे झुलाते रहे। रोना बन्द हुआ तो लगा जैसे मैं वाकई छोटी बच्ची बन गई हूँ। थोड़ी शर्म भी आई कि बेकार ही अच्चन का मूड खराब किया। कभी-कभी तो शाम को वो जल्दी घर आते हैं।

थोड़ी देर बाद अच्चन ने मुझे बिस्तर पर सुला दिया। मैं नींद की चादर ओढ़ ही रही थी कि सिगरेट के धुएँ की गन्ध आई। शायद वो *चाम्बिक्या* के पेड़ के नीचे बैठे होंगे – अकेले, सिगरेट पीते और रोते।

***

आज के दिन की शुरुआत बड़ी खूबसूरत थी। अम्मा मुझ से पहले जाग गई थीं। और इधर-उधर कुछ कर रही थीं। अच्चन ने हमारे साथ नाश्ता किया। वे आपस में बहुत बातें नहीं कर रहे थे। मैंने सब कुछ सामान्य बनाए रखने की कोशिश में रशीदा के बारे में बताया। उसके एर्नाकुलम जाने के बारे में और जादुई लड़की डेज़ी की अपनी नई कहानी के बारे में भी। मैंने उन्हें बताया कि अब मेरा अगला काम बगीचे की सफाई है। वे बोले कुछ नहीं। बस सिर हिलाते रहे। मुस्कराते रहे।

फिर मैंने चाकप्रान्दन के बारे में बताया कि वह खाने के लिए आया था। अच्चन के कान अचानक खड़े हो गए।

"क्या उसने कुछ कहा?" उन्होंने पूछा।

"ना, उसने बस खाया और चला गया।"

"वैसे तो वो कोई नुकसान नहीं पहुँचाएगा। पर फिर भी उसके बहुत नज़दीक मत जाना। खाना दो और तुरन्त अन्दर आ जाओ और दरवाज़ा बन्द कर लो।"

नाश्ता होते ही मैं रशीदा के घर की ओर दौड़ पड़ी। एर्नाकुलम जाने से पहले मैं उससे मिलना चाहती थी। मैंने उससे "बालरमा" की पूरी सीरीज़ माँगी। जब वो यहाँ नहीं होगी तो मेरे पास पढ़ने के लिए बहुत सारा माल-मसाला होगा। उसने उनके साथ रूसी लोककथाओं की एक रंगीन किताब भी झोले में रख दी। यह किताब उसे उसके भाई ने दी थी। किताब जगह-जगह से फटी हुई थी। उसका कवर भी नहीं था। फिर भी वो अच्छी लग रही थी। मैंने रशीदा को बाय कहा और किताबों का भारी झोला उठाकर घर की ओर चल दी। अम्मा अभी भी जगी हुई थीं। तो मैंने पूछ लिया मेरे साथ बगीचा साफ करना है?

किताबें पढ़ने, कहानियाँ लिखने के बाद मेरा तीसरा सबसे पसन्दीदा काम था बागबानी करना। पहले अम्मा, सजिचेची और मैं तीनों मिलकर बगीचे में काम करते थे। अच्चन को इसमें बहुत मज़ा नहीं आता था, पर वो हमारे लिए अपने दोस्तों के घर से कलमें और बीज ले आया करते थे। घर के आगे वाले बाड़े में हमारे बगीचे में गुलाब, गुड़हल, मोगरा, *मनदारम, तेच्ची* और *ओड़िचुट्टी* के फूल थे। इसके अलावा टमाटर, फलियाँ, भिण्डी और मिर्चियाँ भी थीं।

बगीचे में जगह-जगह जंगली घास उग गई थी। अम्मा ठीक होतीं तो ऐसा कभी ना होने देतीं। पर आज वो बरामदे में बैठे मुझे घास उखाड़ते देखती रहीं।

फिर अम्मा और मैंने रसम-चावल खाया। दोपहर भर मैं रूसी कहानियाँ पढ़ती रही। एक कहानी थी एक लड़के और सालमन मछली की। उस लड़के के माँ-बाप नहीं थे। वो अपनी चाची के साथ रहता था। चाची उस पर बहुत जुल्म ढाती थीं। वो उससे घर के सारे काम करातीं। एक दिन उस लड़के ने नदी से सालमन मछली पकड़ी। सालमन ने कहा, "अगर तुम मुझे छोड़ दो मैं तुम्हें कुछ खास शक्तियाँ दूँगी।" लड़के ने मछली को वापस पानी में छोड़ दिया। अब जब उसे कुछ चाहिए होता तो वो कहता, "यह मेरी इच्छा और सालमन का हुक्म है... " और वो बात पूरी हो जाती। वो कहता, "यह मेरी इच्छा है और सालमन का हुक्म है कि सारे घड़े पानी से भर जाएँ" और घड़े जादुई ढंग से भर जाते। अब उसे बर्फ से ढँके पहाड़ों पर पानी नहीं ढोना पड़ता। सो चाची अब उस पर किसी बात पर नाराज़ ना होतीं।

काश, मैं भी ऐसी कहानियाँ लिख पाती! पर देखो मेरी हीरोइन डेज़ी अभी भी मेरी किताब के पेज 33 पर बैठी है, बिना किसी काम के। काश मुझे भी सालमन मछली ऐसी जादुई शक्तियाँ दे जाती। पर मैंने तो कोई सालमन देखी भी नहीं है।

शाम को अम्मा ने कहा कि उन्हें बहुत थकान महसूस हो रही है। और वो सोने चली गईं। मैंने खूब सोचा कि क्या ऐसा करूँ कि वो

मेरे साथ देर तक रहें। पर कुछ सूझा ही नहीं। सजिचेची को पता होता था कि ऐसे मौकों पर क्या किया जाना चाहिए। पर जब वो थी अम्मा दिन में कभी सोती भी नहीं थीं। जब तक कि वो बीमार ना हों। और बीमार वो पड़ती नहीं थीं। पर चलो, इतनी तो तसल्ली है कि आज तकरीबन पूरे दिन वो सोईं नहीं।

सात बजे के करीब मैंने रसोई की खिड़की से बाहर झाँका। चाकप्रान्दन का कहीं अता-पता नहीं था। मैंने उसके लिए एक प्लेट में खाना निकालकर रख दिया था। पर जैसे ही मैं टीवी चालू करने को हुई मैंने उसकी आवाज़ सुनी।

मैंने दरवाज़ा खोल प्लेट उसकी ओर बढ़ा दी। उसने खाना अपनी प्लेट में पलटा और वहीं बैठकर खाने लगा। मैं दरवाज़े के पास ही अन्दर की ओर बैठकर उसे देखने लगी। दो-चार ग्रास खाने के बाद उसने कहा, "तुम अनीता ही हो ना?"

मैंने कहा, "हाँ। पर सब मुझे अनु बुलाते हैं।"

"मैं तुमको अनुक्कुट्टी बुलाऊँगा। तुम कितने साल की हो?"

"तीन महीने बाद ग्यारह की हो जाऊँगी।"

"तुम्हें मेरा नाम पता है?" उसने पूछा।

"चक्कू...नहीं," मैंने कहा, "मुझे नहीं पता।"

वो मुस्कराया, "सब मुझे चाकप्रान्दन पुकारते हैं। पर ये मेरा नाम नहीं। मेरा नाम नारायणन है।"

नारायणन। वल्यअम्मा के पति का नाम भी यही था। चाकप्रान्दन को नारायणन के रूप में सोचना भी अजीब था। मैं उससे बहुत कुछ पूछना चाहती थी। पर समझ नहीं आ रहा था कि पूछूँ या नहीं। फिर सोचा पूछ ही लेती हूँ...

"तुम्हारा घर नहीं है? कहाँ है?"

"हम्मममम घर," चाकप्रान्दन ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, "होता था मेरा एक घर। अब नहीं है।"

"क्यों नहीं है?"

चाकप्रान्दन, ना ना ना नारायणन – थोड़ी देर के लिए कुछ नहीं बोला। बस अपनी प्लेट को घूरता रहा। "कभी-कभी घर रहने की सबसे अच्छी जगह नहीं होता।" उसने कहा। फिर एक गहरी साँस ली और मुझे देखने लगा, "तुम्हारे अम्मा-अच्चन कहाँ हैं?"

"अच्चन अभी तक नहीं आए और अम्मा बीमार हैं। सोई हुई हैं।"

"क्या हुआ उन्हें?"

मुझे समझ नहीं आया कि सजिचेची की मौत के बारे में बताऊँ या नहीं। क्योंकि जब भी सजिचेची का ज़िक्र आता था लोग फुसफुसाने और सिर हिलाने लगते थे। "वो दुखी हैं।" मैं बोली।

"क्या हम सभी कभी ना कभी दुखी नहीं होते?" वो बोला। "तुम उनका खयाल रख रही हो ना। तुम तो बहुत दिलेर लड़की हो।"

वो मुझे दिलेर समझता है सुनकर मैं बहुत खुश हुई। "बस वो तो," मैंने कहना शुरू किया। "मैं तो बस यही चाहती हूँ कि वो पहले जैसी हो जाएँ। काम पर जाएँ, मेरे साथ खेलें – बस सब कुछ पहले जैसा हो जाए।"

चाकप्रान्दन ने खाना खत्म किया और दीवार से टिककर पानी पीने लगा। "हाँ...होता है कभी-कभी। उदासी देर तक नहीं जाती। पर तुम देखना, जल्दी ही वो एकदम ठीक हो जाएँगी।"

उसकी आवाज़ बहुत धीमी थी। बीच-बीच में तो सुनाई ही नहीं दे रही थी। मैंने उसे रशीदा के दादा से बातें करते देखा था। पर मैं उससे पहली बार बात कर रही थी। इससे पहले मैंने उसकी आवाज़ तक नहीं सुनी थी।

"तुम्हारे बच्चे हैं?" कुछ देर बाद मैंने पूछा।

"हाँ...है। एक बेटा है। छोटा-सा है। उसका नाम है सोमन।" फिर वो सिर हिलाकर हँसने लगा। "पर शायद अब वो उतना छोटा नहीं रहा। मैंने उसे बहुत अर्से से नहीं देखा।"

मुझे याद आया जब अच्चन दुबई चले गए थे तो सजिचेची और मुझे उनकी बहुत याद आती थी। उनसे भी रहा नहीं गया और वो तीन महीने में ही लौट आए थे।

"तुम्हें भी दुख होता होगा? मैंने कहा। तुम अपने घर जाकर उससे मिल क्यों नहीं लेते?"

चाकप्रान्दन उठ खड़ा हुआ। "रात हो रही है," वो बोला। "अब तुम अन्दर जाओ।" उसने अपनी प्लेट और गिलास उठाया और अँधेरे में गुम हो गया।

मुझे मालूम था मेरे सवालों ने उसे दुखी कर दिया था। पर मैं उसके बारे में और ज़्यादा जानना चाहती थी – वो बोरी के थेगड़े वाले कपड़े ही क्यों पहनता था? वो घर क्यों नहीं जाना चाहता? पोस्ट ऑफिस के बरामदे में अकेले बैठे-बैठे वो क्या सोचता रहता था? मैं अच्चन का इन्तज़ार करते-करते सोचती रही। आज उन्हें बहुत देर हो गई थी। साढ़े दस तक मैं जगी रही, फिर सो गई।

उस दिन के बाद से चाकप्रान्दन लगभग रोज़ ही आने लगा था। मैं उसे खाना देती
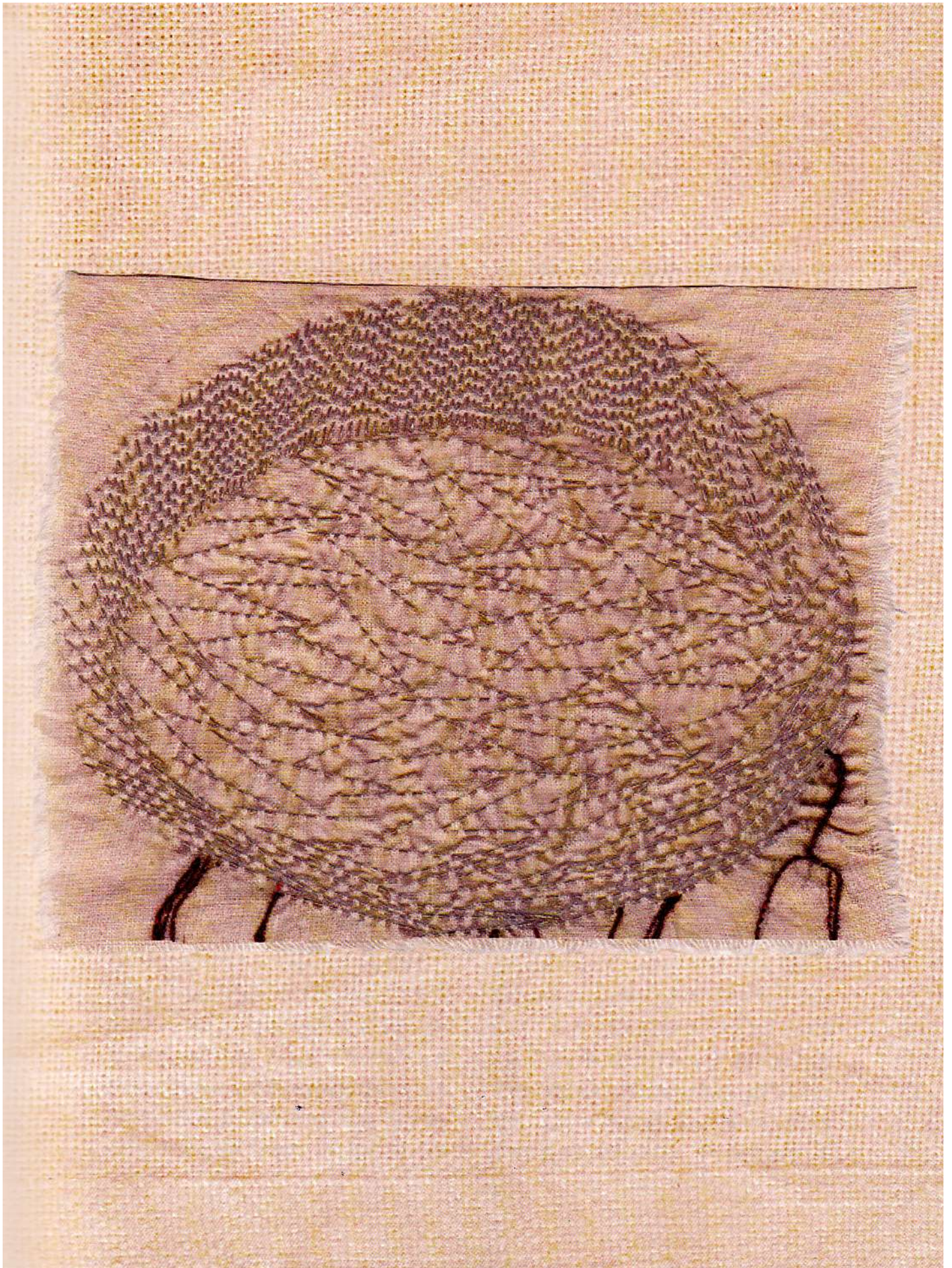
और फिर हम बातें करते। दो-तीन बार जब वो आया तो अच्चन घर पर ही थे। तब मैं खाना देकर फटाफट दरवाज़ा बन्द कर देती थी। क्योंकि मुझे पता था कि मेरा उससे बात करना अच्चन को अच्छा नहीं लगता था। ऐसा नहीं कि उन्होंने मुझे डाँटा हो या उससे बात करने से मना किया हो। पर मैं जानती थी कि उन्हें मेरी चिन्ता होती थी। मुझे डर था कि कहीं ऐसा ना हो कि चाकप्रान्दन से बातें करता देख अच्चन उसे हमारे घर आने से मना कर दें।

आम तौर पर चाकप्रान्दन ज़्यादा बातें नहीं करता था। मैं बस बैठ जाती और उसे खाना खाते देखती रहती। और बीच-बीच में वह कुछ कह देता या पूछ लेता। चाकप्रान्दन, वैसा ही था जैसे आम तौर पर बड़े लोग होते हैं – अगर आप कुछ पूछो जिसका जवाब देने का उसका मन नहीं होता तो कह देता, "तुम नहीं समझोगी। छोटी हो।" इसके आगे बात बढ़ाने का कोई मतलब ही नहीं रह जाता।

और जब उसका बात करने का बहुत मन होता तो वो अपने बेटे सोमन के बारे में बताता – कैसे स्कूल के पहले दिन वो पूरे रास्ते रोता गया, कैसे गणित में पूरे नम्बर लाने वाला वह लड़का एक शब्द के भी हिज्जे सही नहीं लिख पाता था। और मैं उसे सजिचेची के बारे में कुछ बताती। कि मुझे उनकी कितनी याद आती है। कि अपनी गन्दी हैंडराइटिंग और लोगों के फुसफुसाने के कारण मुझे स्कूल जाना कितना बुरा लगता है। फिर मैं चाकप्रान्दन के साथ होने वाली बातों को लिखने लगी। बस चाकप्रान्दन की बजाय उसका नाम नारायणन लिखती हूँ।

उसने अपनी जीप के बारे में बताया। उसके पास पूरे ज़िले में जीप को टैक्सी की तरह चलाने का लाइसेंस भी था। कलशेरी के घुमावदार रास्तों में तेज़ गाड़ी चलाने के बारे में बताते हुए उसकी आँखें चमक उठतीं। और फिर एक दिन उसका एक्सीडेंट हो गया।

"कैसे?" मैंने पूछा।

चाकप्रान्दन बहुत दुखी हो गया था। वो मुश्किल से साँस ले पा रहा था। वो कुछ बोल रहा था जिसे मैं बिलकुल नहीं समझ पा रही थी।

"आवाज़ें," "उफ्फ वो आवाज़ें..."

मैंने उससे कहना चाहा कि सब ठीक है... और उसे पानी दिया। फिर हम दोनों कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी देर बाद वो उठा और कुछ भी कहे बगैर चल दिया।

एक्सीडेंट की बात ने उसे परेशान कर दिया था। इसने मुझे भी परेशान कर दिया था। और अब मैं अच्चन से इसके बारे में पूछना चाहती थी। पर अगर मैं उनसे पूछती तो वो बहुत गुस्सा होते। अगली बार जब चाकप्रान्दन आया तो हमने इसका कोई ज़िक्र नहीं किया। और वो पहले की तरह ही बैठा रहा।

फिर एक दिन वो नहीं आया। मैं इन्तज़ार करती रही, करती रही। पर वो नहीं आया। अगले दिन भी नहीं आया और उसके अगले दिन भी नहीं। अगली सुबह मैं पोस्ट ऑफिस के बरामदे पर उसे ढूँढ़ने गई जहाँ वो सोता था। पर वो वहाँ नहीं था।

रशीदा अपने रिश्तेदार के घर से वापस आ गई थी। मैं उसके घर गई। फिर हम दोनों पोस्ट ऑफिस आए। अम्मिनिअम्मा मुख्य पोस्ट ऑफिस भिजवाने के लिए सारी डाक जमा कर रही थीं। कभी-कभी वो डाक को सील करने वाली लाख के बचे-खुचे टुकड़े हमें दे देती थीं। हमने खिड़की से यूँ झाँका जैसे हम लाख के टुकड़े देखने आए हैं।

उन्होंने हम से वही घिसा-पिटा सवाल पूछा, "छुट्टियाँ मज़े-से कट रही हैं? पढ़ाई-वढ़ाई कुछ याद है कि सब भूल गए...?" मैंने पूछा, "क्या आपने पिछले एक-दो दिन में चाकप्रान्दन को देखा है?"

उन्होंने चिट्ठियों पर से नज़र उठाते हुए कहा, "चाकप्रान्दन में अचानक बड़ी दिलचस्पी जाग गई है तुम्हारी।" अपने चश्मे के ऊपर से उन्होंने आँख उठाकर इस तरह देखा कि लगा वहाँ से फूट लेने में ही समझदारी है।

"अरे, नहीं नहीं... कुछ खास नहीं!" मैं तपाक से बोल पड़ी। "वो तो रोज़ घर पर खाने के लिए आता था। इधर कुछ दिनों से नहीं आया तो पूछ लिया।"

अम्मिनिअम्मा उठीं और कोने वाली तंग-सी शेल्फ पर रखे एक छोटे-से डिब्बे में कुछ ढूँढ़ने लगीं। "उसका मन किया होगा थोड़ी घुमक्कड़ी करने का। सो चला गया होगा। जब-जब उसका मन अच्छा नहीं होता वो चला जाता है।"

उन्होंने हम दोनों को लाख का एक-एक टुकड़ा दिया और कहा, "अब भाग जाओ। और हाँ, चाकप्रान्दन की फिक्र छोड़ दो। यह तुम जैसे छोटे बच्चों की चिन्ता का विषय नहीं।"

अब किसी और से पूछने की कोई ज़रूरत नहीं थी। तो हमने सोचा अब इन्तज़ार ही करते हैं और देखते हैं वो कब आता है।

शाम को मैं अपनी किताब के साथ फर्श पर लेटी थी। मेरी कहानी में डेज़ी अभी भी वहीं अटकी थी। रशीदा का वॉटर वर्ल्ड वाला किस्सा भी मुझमें वो जोश नहीं भर पाया कि डेज़ी के लिए कोई ज़बरदस्त कारनामा लिख पाती। मुझे लगा नहीं कि अगले दो-चार दिन में मैं ऐसा कुछ कमाल कर पाऊँगी कि अच्चन को शान से दिखा पाऊँ। इसलिए जब अच्चन कमरे में आए तो मुझे खुद को लेकर बड़ा बुरा लग रहा था। अभी तो सात भी नहीं बजे थे। आज अच्चन इतनी जल्दी कैसे आ गए? पर वो पीए हुए थे। और उनका मूड काफी खराब लग रहा था।

थोड़ी देर बाद वो मेरे पास आकर बैठ गए और एक सिगरेट जलाई। उनका ध्यान मेरी कॉपी की ओर गया।

"कुछ लिखा इन दिनों?" उन्होंने पूछा।

मैंने फटाफट अपनी कॉपी ले ली। मैं नहीं चाहती थी कि वो चाकप्रान्दन के बारे में मेरा लिखा पढ़ लें। मैंने कहा, "मैं डेज़ी को लेकर अटकी हुई हूँ। उसके पास करने को कुछ नहीं है।" अच्चन ने कहा, "वो ठीक है। बड़े-बड़े लेखक भी इस अटकाव में फँसते हैं।"

तभी मुझे बाहर शोर सुनाई दिया। "चाकप्रान्दन" मैं चिल्लाई और कूद पड़ी। अच्चन ने मुझे पकड़ लिया।

"अनु," उन्होंने सख्त आवाज़ में कहा। "इतनी खुश क्यों हो रही हो?"

मैंने उन्हें बताया कि कैसे चाकप्रान्दन कुछ दिनों से नहीं आया था।

"मैंने कहा था ना कि उससे बचकर रहना। वो ठीक नहीं है। बीमार है शायद। माधवन ने दो दिन पहले उसे चेलेम्ब्रा में देखा था। वो चीख-चिल्ला रहा था। वो जैसा शान्त और चुप-चपीता दिखता है वैसा नहीं था।"

"पर, हो सकता है कि वो भूखा हो। उसने शायद कई दिन से खाना ना खाया हो।" मैंने उनकी बात को काटते हुए कहा।

अच्चन का पारा चढ़ने ही वाला था, "तुम्हें इस बारे में फिक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं। समझीं। तुम यहाँ बैठो, मैं देखता हूँ उसे क्या चाहिए।"

वो रसोई में गए और मैंने पीछे वाला दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनी। थोड़ी देर तक कुछ सुनाई नहीं दिया। फिर अच्चन की तेज़ आवाज़ आई। पर वो बोल क्या रहे थे यह नहीं पता चल रहा था। फिर वो अन्दर आए और बोले, "अभी तो वो चला गया है। फिर आए तो दरवाज़ा मत खोलना, कम से कम कुछ दिनों तक तो नहीं।"

रात में बिस्तर पर लेटे-लेटे मैं सोचती रही कि चाकप्रान्दन को कौन खाना देगा। लेटे-लेटे एक घण्टा हो गया फिर भी नींद नहीं आई तो मैं अम्मा के कमरे में चली गई। वो गहरी नींद में थीं। उन्होंने आज अपनी दवाई ली होगी। मैंने एक बाँह उनके ऊपर रखी और उनसे सटकर लेट गई।

ना जाने कब नींद आ गई। आँख खुली तो चारों ओर अँधेरा था। मैं लेटी रही और कल के बारे में सोचती रही और यह कि चाकप्रान्दन को कैसा लग रहा होगा। सोचते-सोचते जाने कब फिर नींद लग गई।

***

अगली सुबह मैं उठी और रसोई में गई। वहाँ वल्यअम्मा थीं। उन्होंने मुझे नहाने भेज दिया और वो अम्मा के कमरे में चली गईं। मैंने सुना कि वो उठने के लिए अम्मा की मनुहार कर रही थीं। नहाकर जब मैं बाहर गई तो देखा रघु मामन और अच्चन बैठे कॉफी पी रहे थे।

रघु मामन अच्चन के कज़िन थे। वो भारत कला और खेल क्लब – बीएएस क्लब – के अध्यक्ष थे। इस क्लब के सभी सदस्य रघु मामन जैसे थे – सभी कॉलेज जाते थे और उनका दफ्तर पोस्ट ऑफिस के ऊपर वाले कमरे में था। हर साल गर्मियों की छुट्टियों में वे कई गतिविधियाँ करते हैं। जैसे, आसपास के दूसरे क्लबों के साथ क्रिकेट या फुटबॉल के मैच आयोजित करना। पिछले साल तो उन्होंने एम जी श्रीकुमार और सुजाता के साथ एक फिल्म संगीत का कार्यक्रम भी किया था! कभी-कभी वे सार्वजनिक् तालाब की सफाई या बस अड्डे के आसपास की दुकानों की रंगाई-पुताई जैसे काम भी करते हैं।

रघु मामन इस साल की गतिविधियों के बारे में अच्चन से चर्चा कर रहे थे। मैं वहीं बैठी उन्हें सुनने लगी।

"इस साल कम पैसा इकट्ठा हुआ है। आजकल कोई पैसा देना ही नहीं चाहता। मुझे नहीं लगता इस बार कोई खेल का या सांस्कृतिक कार्यक्रम हो पाएगा।" रघु मामन कह रहे थे।

"तो क्या करने की सोच रहे हो?" अच्चन ने पूछा।

"इस बार कुछ धर्मार्थ करने का सोच रहे हैं। सोचा है कि चाकप्रान्दन को इलाज के लिए कुतिरवट्टम ले जाएँ।"

"यह कितने शर्म की बात है। वो बीमार है। वो इधर-उधर घूमता रहे और हम हाथ पे हाथ धरे देखते रहें। उसे इलाज की ज़रूरत है।" रघु मामन कॉफी का घूँट भरते हुए बोले।

"पर क्या वो तुम्हारे साथ चलेगा?" अच्चन ने पूछा।

"देखो मान-मनोव्वल तो करनी ही पड़ेगी। यह उसी के लिए अच्छा है। हमने कुतिरवट्टम अस्पताल में एक मनोचिकित्सक से बात कर ली है। गली-महल्लों में घूमने वाले पागलों के लिए उनका एक प्रोजेक्ट है।"
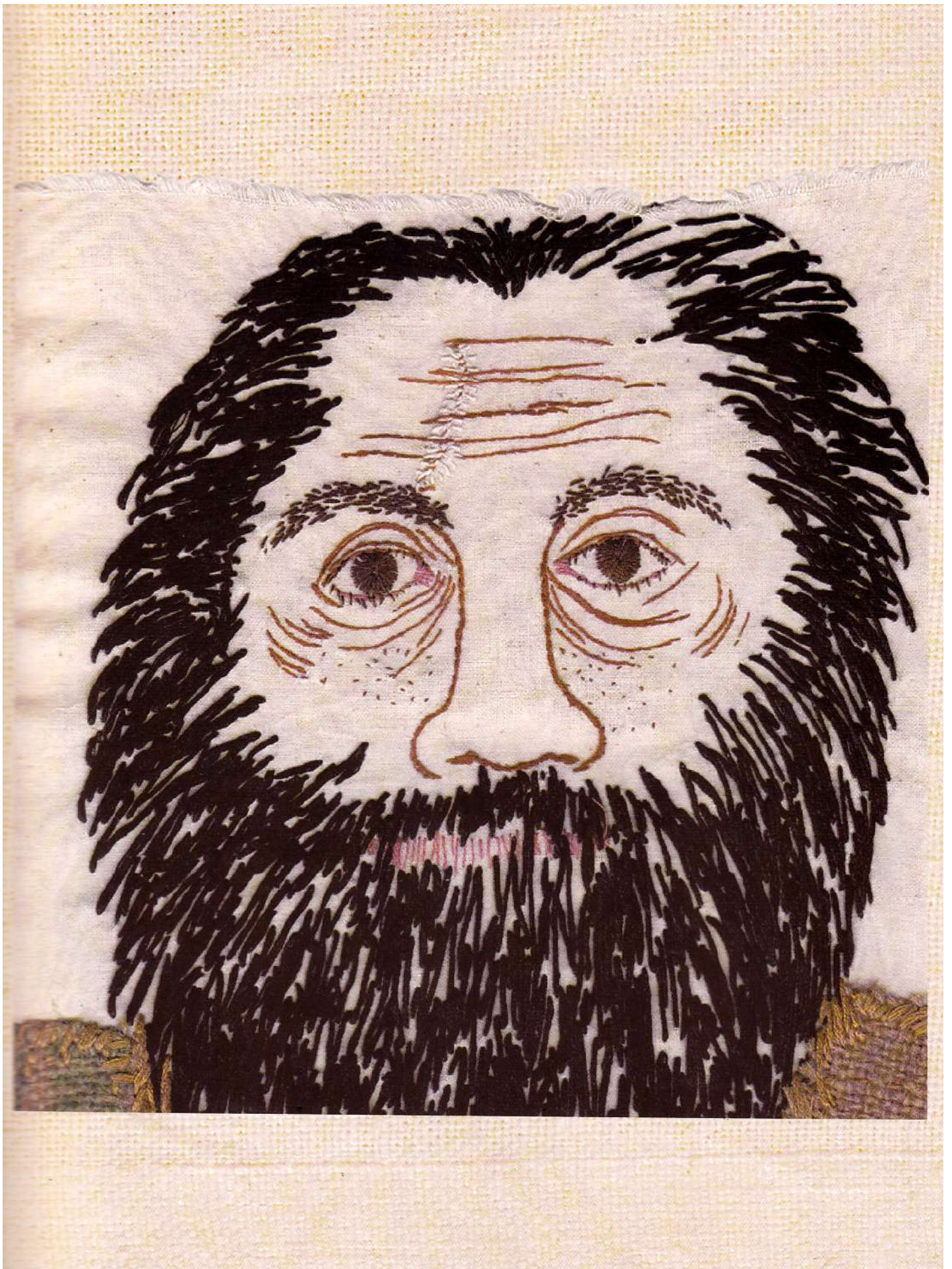
अच्चन ने मेरी ओर देखा। "अनु तुम अन्दर जाके पता तो लगाओ कि नाश्ता तैयार है कि नहीं।" मैं जानती थी कि वो नहीं चाहते कि मैं चाकप्रान्दन के बारे में उनकी बातचीत सुनूँ। सो बहाने से मुझे भगा दिया।

मैं उठी और अन्दर चली गई। कुछ समझ नहीं आ रहा था। हो सकता है रघु मामन ही सही हों कि चाकप्रान्दन को इलाज की ज़रूरत है। पर प्रभाकरन डॉक्टर की दवा से तो अम्मा और ज़्यादा उदास और उनींदी हो जाती हैं। वो तो मुझे ठीक होती नहीं नज़र आतीं। काश कि कोई मुझे इन चीज़ों के बारे में समझाता, मुझसे बात करता। काश कि सजिचेची यहाँ होती, मुझे समझाती।

मैं पूरी सुबह मुँह लटकाए इधर से उधर होती रही। अन्त में वल्यअम्मा का सारा धीरज जाता रहा और उन्होंने मुझे खेलने के लिए रशीदा के घर भेज दिया।

***

वो शनिवार का दिन था। काम पर जाने से पहले अच्चन ने मुझसे कड़ाई से कहा कि आज मैं बिलकुल भी घर से बाहर ना निकलूँ। क्योंकि आज बीएएस के लोग चाकप्रान्दन को तालाब के पास ले जाने वाले हैं ताकि उसे कुतिरवट्टम के लिए तैयार किया जा सके। रशीदा दस बजे आई और हम *तम्बक्का* के पेड़ के नीचे साँप-सीढ़ी खेलने लगे। मेरी गोटी में ऐसे ही नम्बर आते रहे जो मुझे सीधे साँप के मुँह में पहुँचाते रहे।

उसी समय मैंने रघु मामन और उनके दोस्तों को देखा। उनके साथ उनकी क्रिकेट टीम का विकेट कीपर हमीदक्का था, वीडियो की दुकानवाला दिलीपन और कुछ और लोग थे जिन्हें हम नहीं पहचानते थे। हम दौड़ते हुए गेट पर गए, फिर सड़क पार कर पोस्ट ऑफिस पहुँच गए।

वहाँ एक कोने में चाकप्रान्दन बैठा था। भीड़ को देखते ही वो उठा और उसने अपने बोरे को कसकर पकड़ लिया। रघु मामन सीढ़ी चढ़ बरामदे पर पहुँचे और चाकप्रान्दन से बोले, "चलो हमारे साथ। हम सब तालाब में साथ-साथ नहाएँगे।"

चाकप्रान्दन ने भागने की कोशिश की। पर लोगों ने उसे पकड़ लिया। रघु मामन ने तौलिए से उसके दोनों हाथ उसकी पीठ के पीछे बाँध दिए और कभी खींचते, कभी धकेलते, कभी उसके साथ चलते उसे तालाब तक ले आए। मुझे बड़ी-बड़ी सुबकियाँ सुनाई दे रही थीं – चाकप्रान्दन बिना कुछ कहे रोता जा रहा था।

रशीदा और मैं उनके पीछे दौड़े। सड़क पर सभी लोग उसी तरफ भागे जा रहे थे। जल्द ही वहाँ भीड़ लग गई थी। वे उसे तालाब की पूर्वी दिशा में नीचे ले गए। और उसे एक सीढ़ी
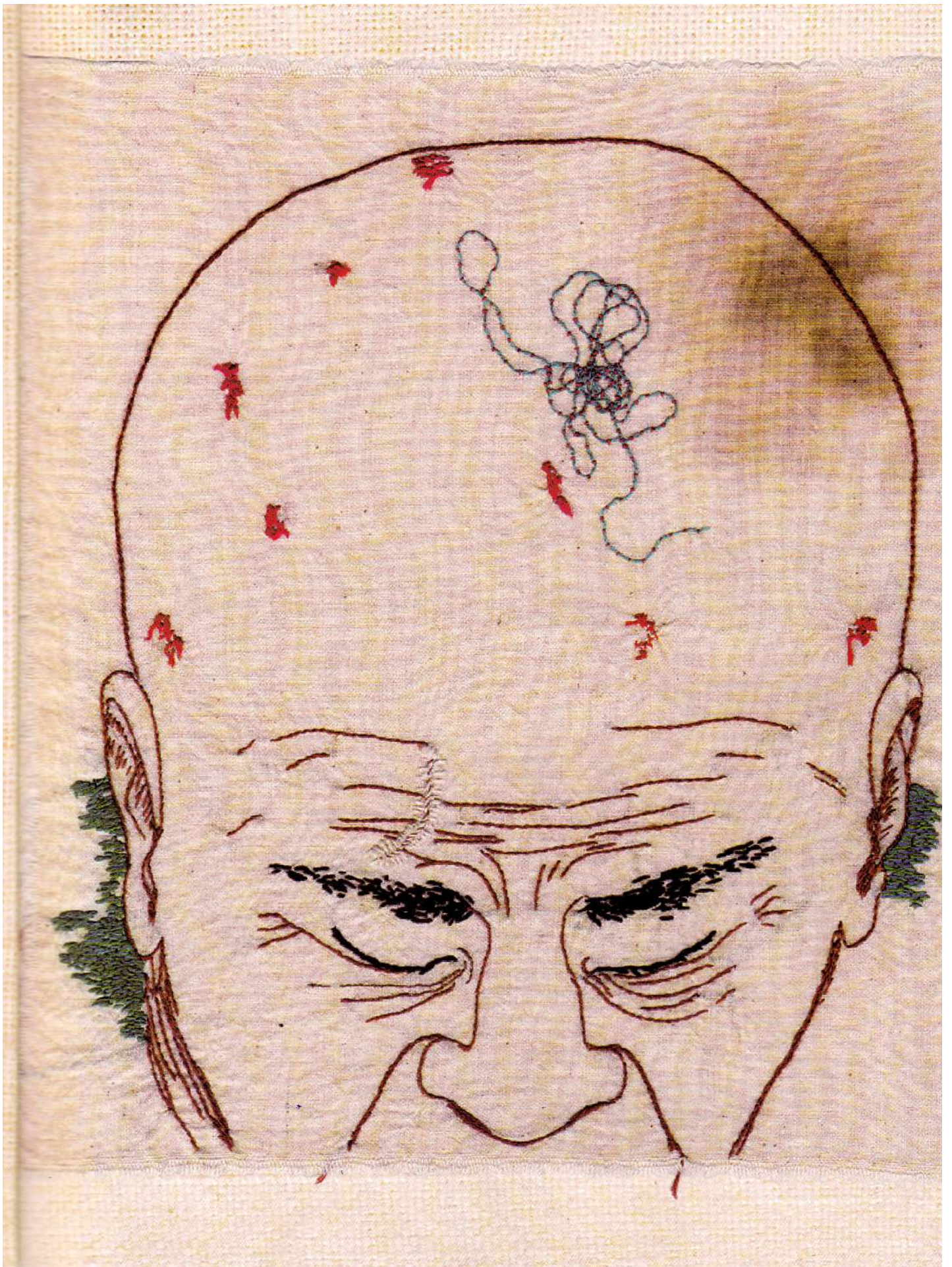
पर बैठा दिया। कुछ लोगों ने उसे जकड़ लिया था और रघु मामन और हमीदक्का उसके बाल काटने लगे। बालों के गुच्छे उसके चारों ओर गिर रहे थे। उसे गंजा कर दिया गया था।

तभी हमें किसी की तेज़ आवाज़ सुनाई दी, "तुम दोनों यहाँ क्या कर रही हो?" हमने मुड़कर देखा। वहाँ रशीदा के दादा जी खड़े थे। वे गुस्से में बोले, "तुम लोगों का यहाँ क्या काम? घर जाओ। अभी..."

"पर उप्पपा..." रशीदा ने बोलना शुरू ही किया था कि वो गुर्राए, "मुँह बन्द। एकदम बन्द। और घर जाओ। अभी के अभी। नहीं तो मैं खुद तुम्हें खींचकर ले जाऊँगा।"

उनके सामने बोलने का कोई फायदा नहीं था। रशीदा के दादा हमारे साथ घर तक आए। वे तब तक खड़े रहे जब तक हम अन्दर नहीं चले गए। हमने टीवी चला ली। सूर्या चैनल में जयराम की एक फिल्म चल रही थी। हम उसे देखते रहे। पर हमारा ध्यान वहाँ नहीं लग रहा था। हम चाकप्रान्दन के बारे में बात करते रहे। वो ठीक होगा कि नहीं।

शाम को जब मैं अपने घर के लिए निकली, सड़क खाली हो चुकी थी। सब कुछ शान्त लग रहा था। लगभग चार बज रहे थे। अम्मिनिअम्मा तीन बजे पोस्ट ऑफिस् बन्द कर घर चली गई होंगी। मैंने सोचा देखूँ चाकप्रान्दन कहीं वहीं तो नहीं बैठा।

मुझे देखते ही वो अपने कोने में दुबक गया। वो मेरी ओर देखने से झिझक रहा था। वो बहुत अलग लग रहा था। उसने भूरी धारियों वाला पजामा और हरी शर्ट पहनी थी। आसपास कहीं भी उसकी बोरियों के टुकड़े नहीं थे। उसके सामने प्लेट में चावल और सब्ज़ी रखी थी। पर उसने उसे छुआ तक नहीं था।

पर उसका चेहरा और उसका सिर...। उसके सिर पर अब बाल नहीं थे, ना ठुड्डी पर। ऐसा लग रहा था जैसे रेज़र से उसकी चमड़ी जगह-जगह से छिल गई थी। वहाँ खून लगा था। उसके बाएँ हाथ की कोहनी पर छिलने के निशान थे, जैसे उसने अपने हाथ को किसी खुरदरे पत्थर पर रगड़ा हो।

मैं बरामदे पर चढ़कर उसके पास बैठ गई। "तुम ठीक हो ना? दर्द हो रहा है?" मैंने पूछा।

वो सिर झुकाए रहा। पर जब मैंने उसकी कोहनी को छूने के लिए हाथ बढ़ाया तो वो अपने कोने में थोड़ा और खिसक गया। "सुनो, तुम अस्पताल चले जाओ। मैंने सुना है वो बहुत बड़ा अस्पताल है।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया। जैसे उसने मुझे सुना भी नहीं हो। समझ नहीं आ रहा था कि उससे क्या कहूँ। "हो सकता है तुम ठीक हो जाओ। फिर तुम सोमन के पास जा सकते हो।"
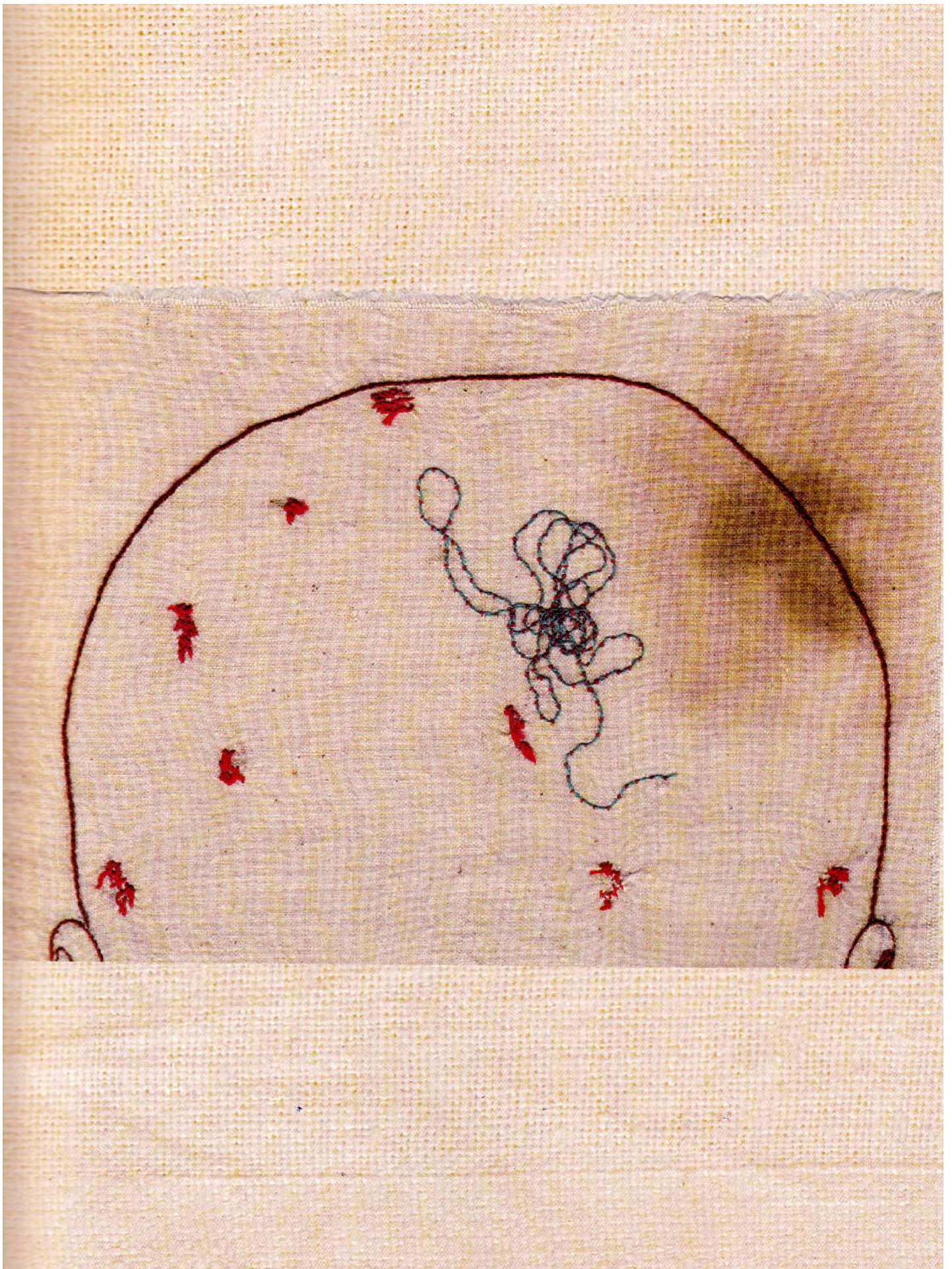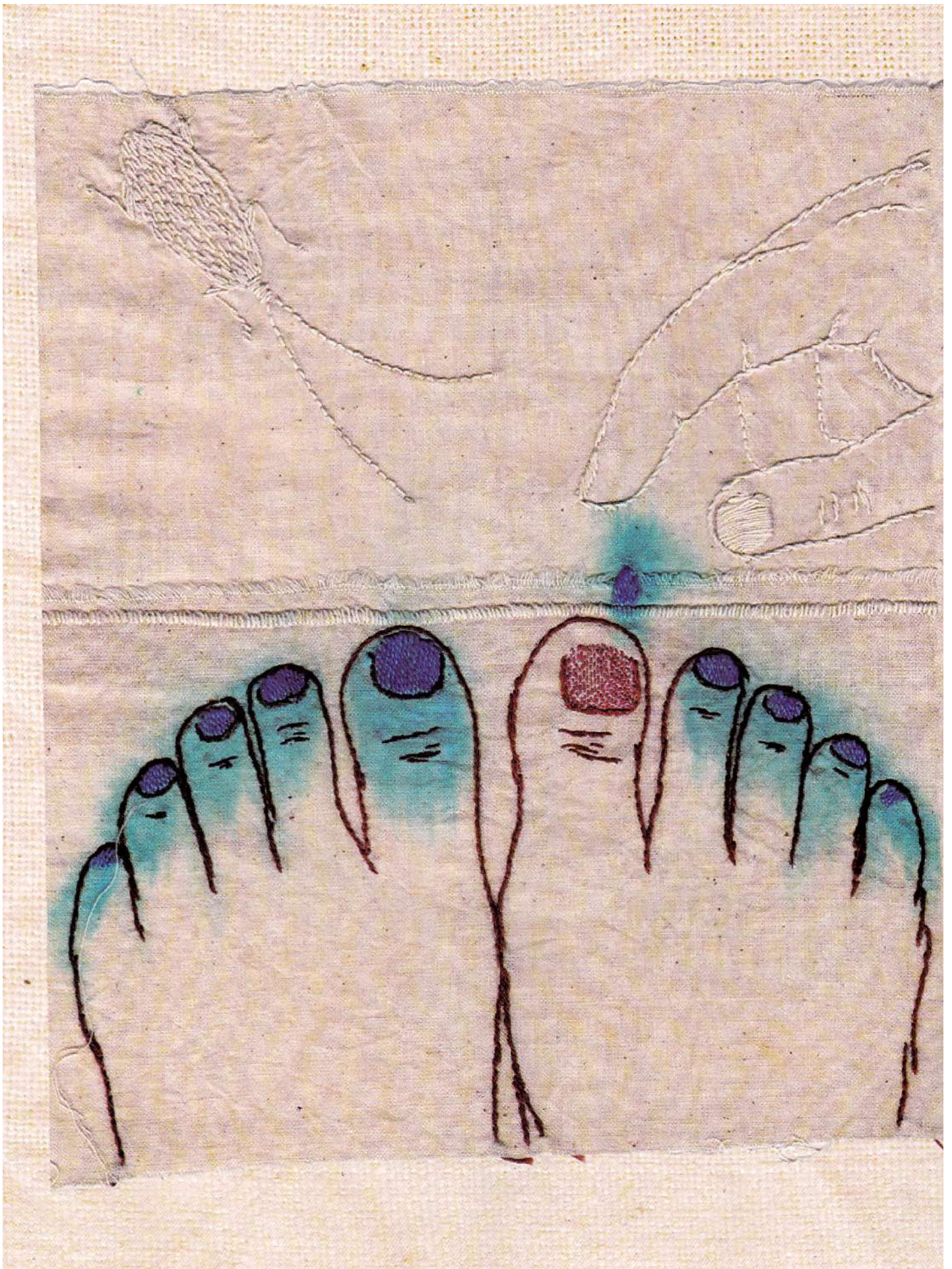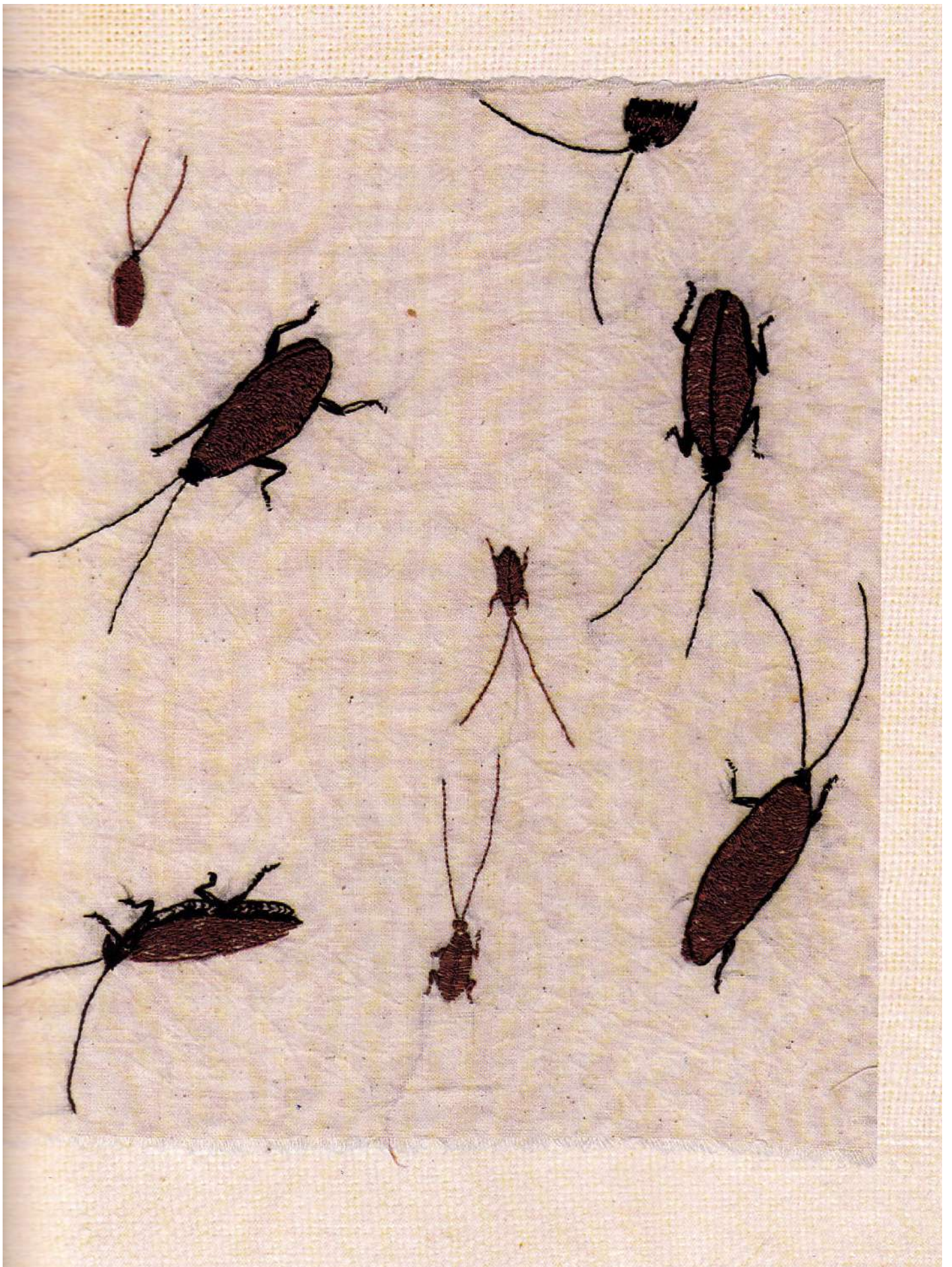
अचानक किसी ने मुझे उठा लिया। मैं लातें मार रही थी, नोंच रही थी। जीप नायाड़िपारा की पहाड़ियों के पीछे गुम होती जा रही थी। और मैं कुछ नहीं कर पाई। मैं चीखती-चिल्लाती रही जब तक कि मेरा गला दुखने नहीं लगा। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि अच्चन या कोई और क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे। मैं नहीं चाहती थी कि वो चाकप्रान्दन को ले जाएँ। रोते-रोते मेरी हिचकियाँ बँध गईं। मैं जितना लड़ सकती थी, लड़ी। अच्चन मुझे उठाए घर की ओर चलते रहे।

मुझे नहीं पता उसके बाद क्या हुआ। बीच में लगा जैसे मेरा शरीर जल रहा था। मुझे तेज़ प्यास भी लगी। ऐसा लग रहा था जैसे मेरे पूरे शरीर पर तिलचिट्टे चल रहे हों। फिर सजिचेची दिखी। वो मेरे पाँव के नाखूनों पर चमकीली नीली नेल पॉलिश लगा रही थी। नेल पॉलिश लगाने के बाद उसने फूँक मारकर उसे सुखाने की कोशिश की। मैंने उसके झुके हुए सिर को देखा। उसके बाल इतने काले थे कि नीले जैसे लग रहे थे।

हमने छुपन-छुपाई खेली। मुझे पता था कि वो हमारी पड़ोसन माधवीअम्मा के पीछे वाले आँगन की बड़ी-बड़ी झाड़ियों में छिप जाएगी। मैंने उसे बहुत ढूँढ़ा पर वो नहीं मिली। जब मेरी आँख खुली तो मैं उसका नाम लेकर ज़ोर-ज़ोर से चीख रही थी। लगा कमरे में बहुत सारे लोग हैं, पर वो कहीं नज़र नहीं आई। वो चली गई थी। पर तिलचिट्टे फिर से आ गए थे।

मैं फिर से जगी तो अम्मा मेरे पास लेटी हुई थीं। उन्होंने मुझे गले लगाया और कहा कि मैंने सब को डरा दिया था। पिछले पाँच दिनों से मुझे तेज़ बुखार था और मैं लगातार नींद के अन्दर-बाहर हो रही थी। अच्चन ने मुझे सूप पिलाने की कोशिश की। शाम को डॉ प्रभाकरन मुझे देखने आए। उन्होंने भी बताया कि घर में सब लोग कितना घबरा गए थे।

उस रात अम्मा मेरे साथ सोईं। अच्चन आए और हमारे बिस्तर पर बैठ गए। उनके हाथ में एक पार्सल था।

"*इंजीमिट्टाई*..." मैं मुस्कराई।

अच्चन के चेहरे पर एक बड़ी-सी मुस्कराहट आई, "हाँ। कितने दिनों से मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं लाया था। तो सोचा आज इसकी भरपाई कर ली जाए।"

मैं एक बार में तीन *इंजीमिट्टाई* खा गई। मैं तो इसका स्वाद तक भूल गई थी – मीठी, तीखी, तेज़...सब साथ-साथ। किसी ने कुछ नहीं कहा और मैं फिर सो गई।

अगली सुबह उठकर मैं सीधा रसोई में गई। अम्मा पहले ही जाग गई थीं और नाश्ता बना रही थीं। कितने अर्से बाद मैं उन्हें इस तरह देख रही थी। वो नहा चुकी थीं। उनके बालों से पानी टपक रहा था। वो राधा साबुन की खुशबू से महक रही थीं। बाद में उन्होंने मुझे गरम पानी से नहलाया। मुझे लगा जैसे मैं नन्ही बच्ची बन गई हूँ।
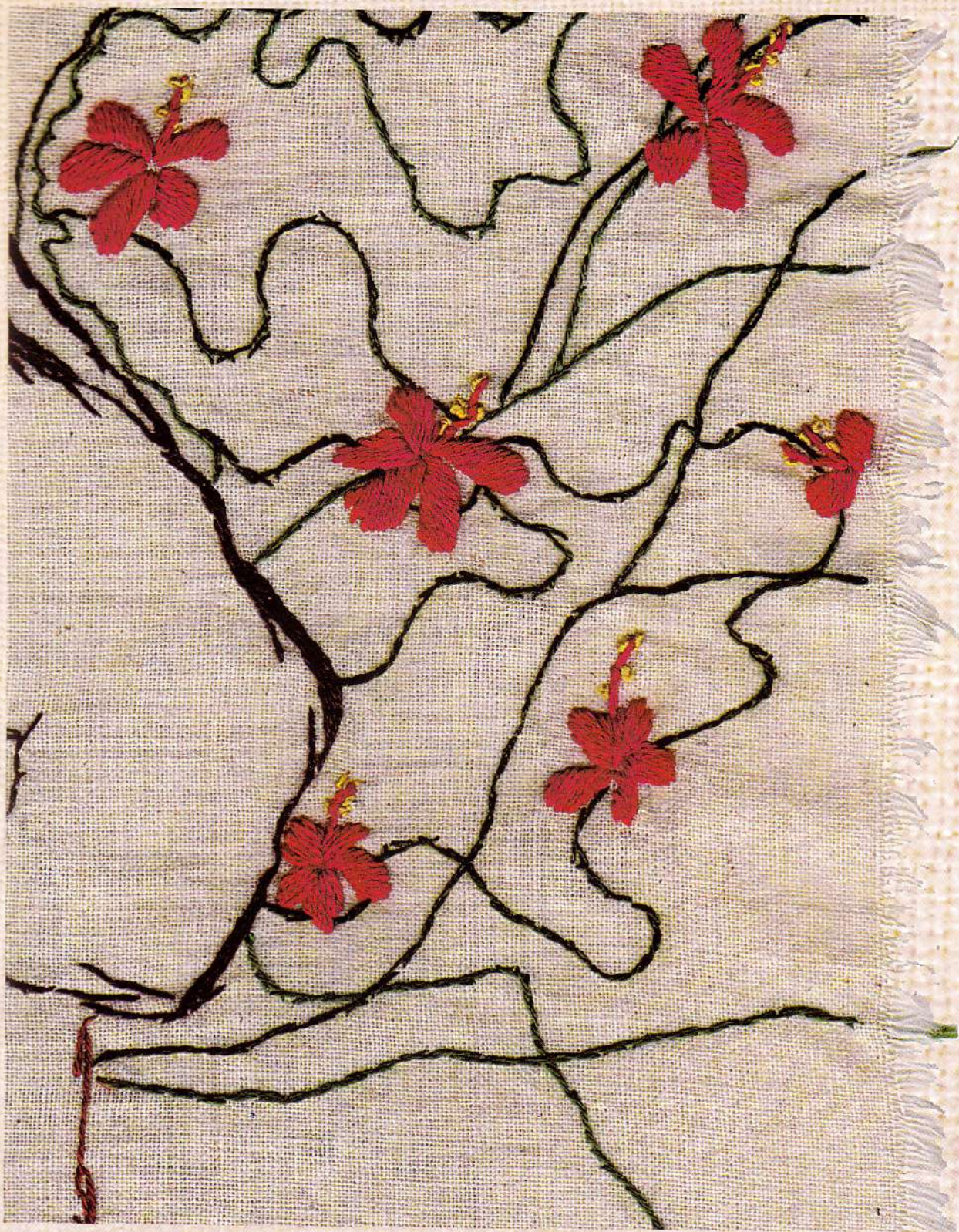
नहाने के बाद मैं बाहर आई। बगीचा सुन्दर लग रहा था। सारे पौधे तरोताज़ा थे। मैं धीरे-धीरे नीचे उतरी और मैंने पोस्ट ऑफिस की तरफ देखा। वो कोना खाली था। वहाँ चाकप्रान्दन नहीं था।

तभी अम्मा पीछे से आईं और मेरे कन्धों पर अपने हाथ रख दिए। "उसे क्या हुआ?" मैंने पूछा। "वे उसे कुतिरवट्टम ले गए थे, पर..." अम्मा कुछ झिझकीं, "रघु ने बताया कि तीसरे ही दिन वो वहाँ से भाग गया। वो यहाँ भी नहीं आया। कहीं और चला गया होगा।"

मेरी आँखें भर आईं। "सब मेरी गलती है।" मैंने कहा। "मुझे उसे बता देना चाहिए था कि ये लोग उसे ले जाने की योजना बना रहे हैं। वो तभी भाग जाता। इतना परेशान किए जाने से पहले ही।"

अम्मा ने मुझे अपनी ओर घुमा लिया और अपने हाथों में मेरा चेहरा थाम लिया। "यह तुम्हारी गलती नहीं है।" उन्होंने कहा। "तुम नहीं जानती थी कि करना क्या है। और तुम्हारे पास कोई भी तो नहीं था जो तुम्हें समझा पाता। मैं भी नहीं थी तुम्हारे पास।" उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और हम वापस चलकर घर के बरामदे में बैठ गए। "कभी-कभी हम में से किसी को नहीं पता होता कि क्या करना ठीक होगा।" वो चुप हो गईं। मैंने एक मैना की आवाज़ सुनी और सिर उठाकर ढूँढ़ने लगी कि वो पेड़ पर कहाँ बैठी है। "वो ठीक हो जाएगा।" अम्मा ने कहा। "जब वो लौट आए तो तुम उसे खाना दे सकती हो।" कहते हुए वह खड़ी हो गईं। "आओ, अब थोड़ी देर के लिए लेट जाओ। मैं तुम्हें दूध देती हूँ।"

मैं उनकी बात पर यकीन करना चाहती थी, पर जानती थी कि वो अब कभी नहीं आएगा। वो बहुत डरा हुआ होगा। क्या पता अम्मा की तरह एक दिन वो भी ठीक हो जाए। मैंने कल्पना की कि चाकप्रान्दन एक छोटे-से लड़के की उँगली पकड़े सड़क पर जा रहा है। फिर कल्पना की कि वो एक कोने में बोरी के थेगड़े वाले कपड़े पहने बैठा है। मैंने बिस्तर पर बैठकर अपनी कॉपी खोल ली। इन गर्मियों में मेरी जादुई लड़की डेज़ी ने कुछ खास नहीं किया था। मैंने सोचा कि उसे घूमने भेज देती हूँ जहाँ वो एक दाढ़ी वाले भले आदमी से मिलेगी और दोनों मिलकर कमाल के कारनामे करेंगे।

मैंने अभी दो ही पन्ने लिखे होंगे कि रशीदा की आवाज़ सुनाई दी। वो अम्मा से मेरी तबीयत का हाल पूछ रही थी। मैंने अपनी कॉपी बन्द की और उससे मिलने के लिए बाहर आ गई।

बोरेवाला

BOREWALA

मूल कहानी और मलयालम से अँग्रेज़ी अनुवाद: जयश्री कलत्तिल
चित्र: राखी पेसवानी
डिज़ाइन: चिनन
अँग्रेज़ी से अनुवाद: शशि सबलोक
शृंखला सम्पादक: सुशील शुक्ल

Anveshi

डिफरेंट टेल्स: स्टोरीज़ फ्रॉम मार्जिनल कल्चर्स एंड रीजनल लैंग्वेज, हैदराबाद के अन्वेषी रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज़ की एक पहल।

अँग्रेज़ी तथा मलयालम में डी सी बुक्स कोट्टायम, केरल द्वारा और तेलुगू में हैदराबाद के अन्वेषी रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज़ द्वारा प्रकाशित।

पराग इनिशिएटिव टाटा ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से विकसित

पहला संस्करण: नवम्बर 2017 (2000 प्रतियाँ)
पहला पुनर्मुद्रण: दिसम्बर 2021 (2000 प्रतियाँ)
कागज़: 100 gsm मैट आर्ट और 210 gsm पेपर बोर्ड (कवर)
ISBN: 978-93-85236-45-7
मूल्य: ₹ 125.00

प्रकाशक: एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल (मप्र) 462026
फोन: +91 755 297 7770-71-72
वेबसाइट: www.eklavya.in; ईमेल: books@eklavya.in

मुद्रक: आर के सिक्युप्रिंट प्रा लि, भोपाल, फोन: +91 755 268 7589

किताबों की सूची

सिर का सालन

फिर जीत गई ताटकी और दिलेर बड़ेय्या

स्कूल की अनकही कहानियाँ

दो नाम वाला लड़का तथा अन्य कहानियाँ

माँ

मटके में चाँद

इतिहास की आत्माएँ

“ चाकप्रान्दन कौन है? वह कहाँ से आता है? गाँव के एक 'विक्षिप्त व्यक्ति' के बारे में एक छोटी लड़की अनु की जिज्ञासा एक अनूठी दोस्ती में बदल जाती है और उसकी अपनी दुनिया को जानने का एक ज़रिया बनती है। ”

मूल्य: ₹ 125.00

डिफरेंट टेल्स क्षेत्रीय भाषा की कहानियाँ ढूँढ-ढूँढकर निकालता है, ऐसी कहानियाँ जो ज़िन्दगी की बातें करती हैं – ऐसे समुदायों के बच्चों की कहानियाँ जिनके बारे में बच्चों की किताबों में बहुत कम पढ़ने को मिलता है। कई सारी कहानियाँ लेखकों के अपने बचपन का बयान करते हुए बड़े होने के अलग-अलग ढंगों को प्रस्तुत करती हैं, प्रायः एक प्रतिकूल दुनिया में जहाँ वे हमजोलियों, पालकों और अन्य वयस्कों से नए सम्बन्ध बनाते हैं। ज़ायकेदार व्यंजनों, छोटे-छोटे जुगाड़ू खेलों, स्कूल के अनापेक्षित सबकों और दिलदार दोस्तियों के माध्यम से ये कहानियाँ हमें एक दिलकश सफर पर ले जाती हैं।